Preface

-: भूमिका :-

'भ्रमरगीत' प्रसंग श्रीकृष्ण चरित्र का मर्मस्पर्शी एवं महत्वपूर्ण प्रसंग है। इस प्रसंग का मूलाधार श्रीमद्भागवत पुराण है। भारतीय सांस्कृतिक जीवन में पुराणों का महत्व अक्षुण्ण है। पुराण-वर्णित पावन चरित्र हमारे मन-प्राणों में अद्यावधि रमे हुए हैं। पुराणोत्तर संस्कृत-प्राकृत भाषाओं के काव्यों में पुराणरूपी सलिला विभिन्न रूपों में प्रवाहित हुई है। पुराण रूपी भागीरथी हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला प्रभृति भारतीय भाषाओं के मध्ययुगीन काव्यांचल के कूलों को आप्लावित करती हुई अग्रसर होती रही है। पुराण साहित्य चिन्तामणि के समान है जिसके आलोक में हिन्दी और गुजराती मध्ययुगीन एवं परवर्ती भक्ति-काव्य का आकलन किया जा सकता है। भारतीय भाषाओं में प्राप्त भ्रमरगीत काव्य इसी परम्परा की देन है।

जिस समय हिन्दी साहित्य में कृष्ण-भक्ति काव्य-परम्परा अपनी सरस स्निग्धता से जन-मन का रंजन कर रही थी और जन साधारण की सगुण के प्रति आस्था की नींव दृढ़ कर रही थी, उसी समय गुजरात के कृष्ण-भक्ति काव्य में 'भ्रमरगीता' की स्नेह सिक्त काव्य-धारा लोगों के मरु-हृदयों में सुधाकणों की वृष्टि कर रही थी। गुजरात के कवियों ने भागवत के 'गोपी-उद्धव' संवाद प्रसंग को प्रेम-लक्षणा भक्ति के रंग में रंगकर 'भ्रमरगीता' के नाम से स्वतंत्र काव्य का विषय बनाया है। हिन्दी की भ्रमरगीत - परंपरा के समान गुजराती में यही काव्य-परंपरा 'भ्रमरगीता' की संज्ञा से लगभग उसी समय में प्रारम्भ होती है। यद्यपि दोनों का प्रतिपाद्य विषय एक हैं। तथापि 'गीत' और 'गीता' जैसी उच्चरपद की शब्दगत भिन्नता भ्रम का आविर्भाव कर सकती है।

उपर्युक्त विशेषता के प्रकाश में हिन्दी एवं गुजराती भ्रमरगीत काव्य की समृद्ध परंपराओं का अनुशीलन भारतीय धर्म-साधना तथा काव्य-चेतना दोनों दृष्टि-कोणों से महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में अब तक जो अध्ययन - अनुशीलन हुए हैं वे केवल हिन्दी की काव्य-परंपरा से सम्बन्धित रहे हैं। एकाध अनुशीलन हिन्दी और गुजराती की कृष्ण - काव्य- धारा को लेकर अवश्य हुए हैं, परन्तु इस विशेष

काव्य -परंपरा का तुलनात्मक अनुशीलन एक प्रकार से नहीं ही हुआ है। जो कथावस्तु और एक विशेष काव्य शैली विगत अनेक शताब्दियों से इन दो प्रदेशों के काव्य-रसिकों को निरन्तर आकृष्ट करती रही हो, उसका गंभीर अनुशीलन ज्ञान के क्षेत्र में विस्तार में सहायक ही कहा जायगा।

प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में भ्रमरगीत काव्य के मूल-स्रोत की चर्चा हुई है। भ्रमरगीत काव्य का आदि स्रोत श्रीमद्भागवत महापुराण है। इस पुराण के दशमस्कंध में विचार एवं भाव की उभयतट वाहिनी पद-पद पर अपनी काव्य-ध्वनि से पाठक को तरंगायित कर देती है। जो लोग धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि को अधिक महत्व न देकर मात्र साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से इसका पान करने के लिए तत्पर हों, उन्हें भी तन्मय कर देने की सहज क्षमता प्रस्तुत स्कंध के विभिन्न अध्यायों में है। महर्षि वेदव्यास द्वारा मंगलाचरण में कथित `पीबत भागवतम्-रसमालयम्` की उक्ति वस्तुत: सार्थक है। द्वादश स्कंध युक्त भागवत का दशम स्कंध उसके हृदय के समान है। इस हृदय रत्नाकर में अनेक काव्य -रत्न अपनी आभा बिखेरे हुए हैं। हिन्दी एवं गुजराती के अधिकांश कवि -कोविदों ने भागवत के इस हृदय रत्नाकर में निमज्जित होकर एक जौहरी के समान अमूल्य रत्नों को परखा है। `वेणुगीत`, `गोपिका गीत`, `युगलगीत`, `वियोगगीत`, `भ्रमरगीत`, और `महिषीगीत` इस हृदय रत्नाकर के ऐसे अमूल्य रत्न हैं जिनके प्रकाश का प्रतिबिम्ब हिन्दी और गुजराती काव्य सुधा-स्यंदिनी में द्रष्टव्य है।

भ्रमरगीत की कथा वस्तु भागवत् के प्रमुख रूप से `गोपिका गीत`, `वियोग गीत`, और `भ्रमरगीत` से सम्बंधित है। अत: दोनों भाषाओं के इस काव्य के सम्यक् अनुशीलन के लिए तीनों प्रसंगों का विवेचन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही आवश्यकतानुसार अन्य गीतों का भी संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। यह उल्लेखनीय है कि कृष्णकाव्य की कथा अन्य पुराणों में भी मिलती है, किन्तु उनमें भ्रमरगीत प्रसंग प्राप्त नहीं होता। अत: उन पुराणों के आवश्यक कथा

सूत्रों की संक्षेप में चर्चा की गई है। इस अनुशीलन से लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि हिन्दी एवं गुजराती भ्रमरगीत काव्यों में कथावस्तु की बाह्य रूप-रेखा श्रीमद्भागवत से ही गृहीत है। किन्तु युगीन परिस्थिति और संप्रदाय विशेष की भक्ति-भावना की प्रेरणा के कारण उनमें अनेक मौलिक उद्भावनाओं का समावेश हुआ है। इस अध्याय के विवेचन में अनेक संदर्भ ग्रन्थों की सहायता ली गयी है, किन्तु उनके आधार पर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं वे लेखक के अपने निजी हैं।

द्वितीय अध्याय 'हिन्दी एवं गुजराती साहित्य में भ्रमरगीत काव्य- परम्परा' से सम्बंधित है। हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत काव्य -धारा अपना विशिष्ट स्थान रखती है। पिछले पांच सौ वर्षों से यह काव्य-धारा अजस्र रूप से प्रभावित हो रही है। भागवत में वर्णित भ्रमरगीत के प्रसंग को 'उद्धव-ब्रजागमन' और 'उद्धव-संदेश' के साथ, अधिकतर कृष्ण-भक्त कवियों ने गीति पदों के रूप में गाया है। प्रसंग, भाव और विचाराभिव्यक्ति में इन कवियों ने आवश्यकतानुसार परिवर्तन एवं परिवर्धन किया है। इस प्रसंग को लेकर इन कवियों ने अपने- अपने दृष्टिकोण से भक्ति, ज्ञान, विरह और उपालंभ की व्यंजना की है। भ्रमरगीत काव्य के सम्यक् अध्ययन के लिए हिन्दी साहित्य में उसके क्रमिक विकास का अध्ययन इस अध्याय में विशेष रूप से प्रस्तुत हुआ है। सबसे पहले, विद्यापति की पदावली में इस प्रसंग के कुछ पद मिलते हैं। इनमें विरहिणी राधा मधुकर को सम्बोधित करके कृष्ण की निष्ठुरता का प्रेममय उलाहना देती है। भ्रमरगीत काव्य - परंपरा भक्तिकाल से अद्यावधि पल्लवित होती रही है। भ्रमरगीत प्रसंग को लेकर लिखे गये काव्य दो तरह के हैं :-

१- भ्रमरगीत के किसी एक अंश का उल्लेख या वर्णन मात्र।

२- जिसमें सम्पूर्ण प्रसंग को सरसता एवं विस्तार से प्रस्तुत किया गया हो।

हिन्दी भ्रमरगीत काव्य-परंपरा में लगभग पचास से भी अधिक कवियों की कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत है। इस अध्याय में कवि का परिचय एवं कृति - परिचय यथास्थान दिया गया है। हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत की यह काव्य-धारा जो भक्तिकालीन साहित्य की उर्वर भूमि में पनपी थी, नूतन भाव-संपत्ति से समृद्ध होकर आज भी अजस्र रूप से प्रवाहित हो रही है।

मध्यकालीन गुजराती कविता का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय भक्ति है। प्राक् नरसिंह युग में जैन कवियों ने गुजराती भाषा को धर्मोपदेश का वाहक बनाया था। नरसिंह युग में धार्मिक संस्कारों को दृढ़ीभूत करने वाली कृष्ण-भक्ति का सूत्रपात हुआ। गुजराती साहित्य के मूर्धन्य आलोचक प्रोफेसर अनन्तराय रावल ने गुजराती के मध्यकालीन काव्य-प्रवाह को तीन धाराओं में प्रवाहित बताया है -

१- भक्त-हृदयों की सहज भाव प्रधान कविता।

२- भक्ति-बोध-प्रधान कविता।

३- भक्त-चरित्र-प्रधान कविता।

प्रथम प्रवाह शुद्ध भक्ति का प्रवाह है। इसमें अधिकांश कविता कृष्ण और गोपियों की या राधा की ब्रजलीला से युक्त है। गोपियों की प्रेम-लक्षणा भक्ति के विविध भावों का चित्रण करते हुए कई कवियों ने स्वयं गोपी भाव का अनुभव किया है। इस प्रकार मध्यकालीन गुजराती कविता कृष्ण-भक्ति और उसमें भी प्रेम-लक्षणा भक्ति से युक्त है। मध्यकालीन गुजराती कवियों पर पुराण साहित्य का प्रभूत प्रभाव पड़ा है। कृष्ण-भक्ति को प्रतिष्ठित करने में भागवत पुराण का योगदान शीर्ष स्थानीय है। इस पुराण के विशेष प्रचलन के प्रमाण गुजरात के इतिहास में मिलते हैं। मूलराज सोलंकी द्वारा भागवत की ११०८ हस्तलिखित प्रतियां सिद्धपुर के ब्राह्मणों को दान में देने की बात प्रसिद्ध ही है। भागवत और उसके दशमस्कंध के अनुवादों की जो परंपरा गुजरात में उपलब्ध होती है उससे उसकी लोकप्रियता एवं व्यापक प्रचार का परिचय मिलता है। गुजराती साहित्य के अधिकांश अनुवादकों ने भागवत पुराण का अक्षरश: अनुवाद न करते हुए युगानुरूप परिवर्तन एवं परिवर्धन किया है। दशम् स्कंध के विभिन्न अध्यायों पर स्वतंत्र आख्यानों की भी रचना हुई है। संपूर्ण भागवत पुराण की अपेक्षा कवियों एवं भक्तों का हृदय दशमस्कंध की विभिन्न कृष्ण-लीलाओं पर विशेष मुग्ध था। इन लीलाओं का गुजराती कवियों ने अपने काव्य में श्रुतिमधुर वर्णन किया है।

गुजरात में श्रीकृष्ण की प्रेम-लक्षणा भक्ति के व्यापक प्रचार का श्रेय पुष्टिमार्ग

को है। पुष्टिमार्ग के प्रवाह में पौराणिक भक्ति-प्रवाह में सांप्रदायिक भक्ति-प्रवाह का सुन्दर समन्वय हुआ है। गुजरात में प्रवर्तित वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों में पुष्टिमार्ग के पश्चात् दूसरा उल्लेखनीय स्वामीनारायण सम्प्रदाय है। सम्प्रदाय युक्त अनेक कवियों के अतिरिक्त इन पुष्टिमार्गीय एवं स्वामीनारायण सम्प्रदाय के अनुयायी भक्त कवियों ने कृष्ण- भक्ति की सरस और स्निग्ध रसधारा बहाई है। इस रसधारा में भ्रमरगीत काव्य का उल्लेखनीय स्थान है। गुजरात के कवियों ने भागवत के 'गोपी-उद्धव-संवाद' प्रसंग को प्रेम लक्षणा भक्ति के रंग में रंगकर 'भ्रमरगीता' के नाम से स्वतन्त्र काव्य का विषय बनाया है। हिन्दी की भ्रमरगीत काव्य -परम्परा के समान गुजराती में यही काव्य-परम्परा 'भ्रमरगीता' की संज्ञा से लगभग उसी समय में प्रारम्भ होती है। प्रस्तुत अध्याय में गुजराती के उन कवियों की कालानुक्रम से चर्चा की गयी है, जिन्होंने अपने काव्य में 'भ्रमरगीत' प्रसंग को स्थान दिया है। इन कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का आवश्यकतानुसार परिचय दिया गया है। प्रत्येक कवि की भ्रमरगीत सम्बन्धी रचनाओं का संक्षेप में परिचय एवं विवेचन प्रस्तुत किया गया है। रचनाओं के विवेचन में लेखक ने मौलिकता का आग्रह रक्खा है।

तृतीय अध्याय हिन्दी एवं गुजराती भ्रमरगीत के भावपक्ष से सम्बन्धित है। भ्रमरगीत, विप्रलंभ शृंगार का काव्य है। हिन्दी एवं गुजराती दोनों के भ्रमरगीत-काव्य में विरह की विशदता और व्यापकता के दर्शन होते हैं। श्रीकृष्ण के वियोग में नन्द, यशोदा और गोपियों ने आंसुओं की जो धारा बहाई है वह दोनों भाषाओं के काव्य की अक्षयनिधि है। प्रस्तुत अध्याय में सर्वप्रथम शृंगार के भेदोपभेदों की चर्चा करते हुए लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि भ्रमरगीत काव्य का विरह -वर्णन प्रवासजन्य है। यह विरह वर्णन शास्त्रोक्त रूप में बंधा बंधाया वर्णन न होकर अधिक स्वतंत्ररूप में है। विरहाभिव्यक्ति को तीव्र बनाने के लिए अधिकांश कवियों ने प्रकृति का उद्दीपन के रूप में प्रयोग किया है। विरह की दशा-दशाओं का वर्णन भ्रमरगीत काव्य में सहज प्राप्त होता है। इसी अध्याय में नन्द-यशोदा के विरह-वात्सल्य का वर्णन भी प्रस्तुत किया गया है। वात्सल्य का पूर्ण अनुभव माता को ही होता है।

अत: माता यशोदा के करुणा विगलित हृदय का सोदाहरण वर्णन किया गया है। भ्रमर के माध्यम से उपालंभों की परम्परा भ्रमरगीत काव्य की अपनी स्वतन्त्र विशेषता है। इस उपालंभ-परम्परा के कारण इस काव्य -धारा में अनोखा आकर्षण मिलता है। लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि उपालंभत्व भ्रमरगीत काव्य का प्राण तत्व है। प्रस्तुत अध्याय का अधिकांश विवेचन लेखक ने निजी सूझ-बूझ से किया है।

चतुर्थ अध्याय भ्रमरगीत काव्य में नाटकीय तत्वों के अध्ययन का है। इसमें आरम्भ में उन रंगमंचीय परम्पराओं पर विचार किया गया है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में भ्रमरगीतों को प्रभावित करती रही है। यह माना जाता है कि रासलीला नाटकों का प्रारंभ महाप्रभु बल्लभाचार्य जी की प्रेरणा से हुआ था। बल्लभ-सम्प्रदाय तथा अन्य कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदायों में रासलीला का महत्व प्रतिष्ठित है। रासलीला के रंगमंचीय विधानों में कृष्णभक्त कवियों के लीला-गान ने अपना स्वाभाविक रूप से प्रभाव डाला है। अतएव, इसी के स्पष्टीकरण के लिए सर्वप्रथम रासलीला की परम्परा का संक्षेप में विचार किया गया है। तदनन्तर उन रचनाओं पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है जिनमें नाटकीय तत्वों का सम्यक् विनियोजन हुआ है। प्रस्तुत विवेचन के लिए रंग- निर्देश, संवाद- योजना, चरित्र -चित्रण तथा इतर रंगमंचीय विधानों के दृष्टिकोण से हिन्दी और गुजराती के भ्रमरगीत काव्य का विवेचन किया गया है। अन्त में दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से अपनी निजी उपलब्धियों को स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में रासलीला और उसकी परम्परा के विवेचन में अनेक विद्वानों के ग्रंथों से सहायता ली गयी है किन्तु हिन्दी और गुजराती के भ्रमरगीत काव्य में नाटकीय तत्वों का अनुशीलन लेखक का अपना निजी प्रयास है।

पंचम् अध्याय भ्रमरगीत काव्य के कला-सौष्ठव से सम्बंधित है। काव्य के दो प्रमुख भेद प्रबन्ध एवं मुक्तक हैं। मुक्तक का ही एक भेद गीतिकाव्य है। गीति -

काव्य में भावधारा कवि के हृदय से स्वत: प्रवाहित होती है। भावातिरेक ही गीति- काव्य का प्राण है। वस्तु तत्व तो नगण्य होता है। हृदय के कोमलतम भावों की अभिव्यंजना के लिए कवियों ने प्राय: गीति शैली का ही आश्रय लिया है। हिन्दी एवं गुजराती के अधिकांश भ्रमरगीत काव्य-रचयिताओं ने भी इसी शैली को नितान्त उपयुक्त मानकर उसी का प्रयोग किया है। भ्रमरगीत काव्य अधिकांशत: भावना-प्रधान काव्य है। उसके अधिकांश कवि भक्त कवि हैं जो कला के प्रति विशेष सतर्क नहीं हैं। इनके काव्य में अलंकारादि का सन्निवेश प्रयत्न साध्य न होकर सहज रूप में हुआ है। कला-पक्ष के विवेचन और उद्धरणों के प्रयोग में लेखक का निजी प्रयास रहा है।

षष्ठ अध्याय भ्रमरगीत काव्य में भक्ति एवं दार्शनिकता से सम्बंधित है। श्रीमद्भागवत पुराण में ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों का माहात्म्य वर्णित है। तथा उसकी प्राप्ति के लिए ज्ञान और भक्ति दोनों ही साधना रूप में ग्राह्य बताये गये हैं। भ्रमरगीत काव्य में ज्ञान और भक्ति के बीच विवाद उपस्थित कर भक्ति की महिमा का गान मुख्य प्रयोजन है। अधिकांश भ्रमरगीतों में उद्धव को ज्ञान-वेदान्तमार्गी के रूप में लिया गया है। ज्ञानी-योगी उद्धव अहंभाव के साथ ज्ञान-मार्ग का उपदेश देते हैं। अंत में ज्ञानी या योगी उद्धव गोपियों की अप्रतिम प्रेम- लक्षणा भक्ति से मुग्ध होकर या परास्त होकर भक्ति की महिमा का गान करते हैं और उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए बताये गये हैं। लेखक का यह निष्कर्ष रहा है कि अधिकांश भ्रमरगीत रचनाओं में श्रीकृष्ण का सन्देश पहुंचाने के लिये आये हुए उद्धव के मुख में नन्द, यशोदा और गोपियों को आश्वासन देने हेतु ईश्वर की सर्वव्यापकता और हृदय में उसके निवास की ज्ञान वार्ता रखकर निराकार का उपदेश दिया गया है। उसके प्रत्युत्तर में नन्द, यशोदा और गोपियां प्रेम -भक्ति के पक्ष में अपने अनुभवों का वर्णन करती हैं और कभी-कभी सशक्त तर्कों द्वारा ज्ञान का विरोध और भक्ति का समर्थन करती हैं। काव्य के उत्तरार्द्ध में उद्धव को पराजित चित्रित करके ज्ञान पर भक्ति

की विजय बताने का प्रयत्न भी कहीं-कहीं मिलता है । इस प्रकार भ्रमरगीत काव्य-परंपरा में ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग दोनों के सिद्धान्तों की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष चर्चा मिलती है जो बहुधा उपमा और रूपक जैसे अलंकारों से युक्त होकर कलात्मक रूप धारण किये हुए हैं । प्रत्येक कवि ने ज्ञान और भक्ति के खण्डन -मण्डन में एक या दूसरी पद्धति का प्रयोग किया है । अधिकांश कवियों में साम्य मिलता है । इसी अध्याय में भक्ति की विभिन्न व्याख्याओं का निरूपण एवं विश्लेषण किया गया है । ज्ञान, कर्म और भक्ति साधना के तीन प्रमुख मार्ग हैं । इनमें भक्ति मार्ग अपेक्षाकृत सुगम माना गया है । श्रद्धा और विश्वास पर आधारित गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम, ऐसी ही भक्ति है जिसका शत-प्रतिशत सम्बन्ध हृदय से है ।

बल्लभ सम्प्रदाय के अन्तर्गत ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूप स्वीकृत हैं । इस पर भी निर्गुण की अपेक्षा सगुण का माहात्म्य अधिक माना गया है । सगुणोपासना अपेक्षाकृत सरल है क्योंकि इस भक्ति पद्धति में मूर्त या साकार का आधार ग्रहण किया जाता है जबकि निर्गुणोपासना का स्वरूप अस्पष्ट होने के कारण अधिकांश भ्रमरगीत के कवियों ने उसे भ्रामक कहा है । इन कवियों ने निर्गुण का विरोध करके सगुण की महत्ता का प्रतिपादन किया है । उन्होंने ज्ञान मार्ग को कठिन एवं नीरस कहा है तथा भक्ति मार्ग को सरल व सरस कहा है ।

महाप्रभु बल्लभाचार्य ने प्रेम-लक्षणा-भक्ति को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया है । चंचल मन को स्थिर करने के लिए दृढ़ आधार की आवश्यकता रहती है । साध्य का शील-सौन्दर्य-मण्डित रूप चंचल मन को स्थिर करता है । ज्ञान-मार्ग तथा भक्ति-मार्ग में बाह्य विभिन्नता होते हुए भी मूलत: दोनों एक ही हैं । इन दोनों मार्गों में मूल अन्तर ब्रह्म रूप को ग्रहण करने तथा प्राप्ति के साधनों में है । भक्ति-मार्ग हृदय प्रधान है और ज्ञानमार्ग मस्तिष्क प्रधान है । प्राय: सभी भ्रमर -गीतकारों ने निर्गुण -सगुण के विवाद को न्यूनाधिक मात्रा में उठाया है । ~~अतः~~

प्रस्तुत अध्याय में शुद्धाद्वैत दर्शन तथा पुष्टिमार्गीय भक्ति-भावना का ~~वैज्ञानिक~~ निरूपण करते हुए भ्रमरगीत काव्य की भक्ति-भावना एवं दार्शनिकता की प्रस्थापना करने का प्रयत्न किया गया है। लेखक का यह विश्वास रहा है कि ज्ञान-भक्ति का विवाद और ज्ञान पर भक्ति की विजय बताने का प्रयत्न या तो भक्ति-मार्ग की सरलता और सुगमता को लेकर है या सम्प्रदाय विशेष के प्रति विशेष श्रद्धा का परिणाम है।

सप्तम् अध्याय युगीन परिवेश और हिन्दी गुजराती के भ्रमरगीत से सम्बंधित है। भ्रमरगीत काव्य की कथावस्तु की बाह्य रूप-रेखा यद्यपि पौराणिक रही, तथापि समय - समय पर कवियों ने उसे मौलिक उद्भावनाओं द्वारा युगानुरूप बनाया है। कवियों की इस निजी चेतना में युगीन परिवेश का योगदान अनुपेक्षणीय है। अत: इस दृष्टिकोण से इन रचनाओं का अध्ययन करने के लिए सर्वप्रथम उन्हें मध्ययुगीन एवं आधुनिक युग की परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अलग -अलग रखकर उनके अनुशीलन का प्रयास किया गया है। मध्यकालीन भ्रमरगीत काव्य में विशेष कर धार्मिक परिस्थितियां सहायक कही जा सकती हैं। अत: इस दृष्टिकोण से हिन्दी और गुजराती के मध्ययुगीन भ्रमरगीत काव्य का तुलनात्मक अनुशीलन किया गया है। इस अध्ययन द्वारा लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि हिन्दी के भ्रमरगीतों में से कुछ तो केवल भक्ति - भावना की ही देन हैं और परवर्तीकालीन अनेक रचनाओं पर रीतियुगीन शृंगारिकता और अभिव्यंजना शिल्प का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। किन्तु गुजराती के भ्रमरगीतों में हिन्दी की रीतियुगीन प्रवृत्तियां नहीं दिखाई पड़तीं। इसके उपरान्त आधुनिक काल के भ्रमरगीत काव्य का अनुशीलन युगीन परिवेश के प्रकाश में किया गया है। ये रचनाएं दो प्रकार की हैं। एक तो वे जो मध्ययुगीन प्रवृत्तियों का अनुसरण करती रहीं और दूसरी वे जो भाव, विचार, काव्यरूप और अभिव्यंजना शिल्प आदि सभी में युगीन परिवेश से प्रेरित एवं प्रभावित हैं। अत: इन विविध रचनाओं पर अलग - अलग विचार करते हुए अपने निजी, मौलिक निष्कर्षों पर पहुंचने का प्रयास किया गया है। इस दृष्टिकोण से आलोच्य कृतियों का समग्रतया मूल्यांकन करते हुए हिन्दी और गुजराती के भ्रमरगीत काव्य में पाये जाने वाले साम्य

और वैषम्य पर भी विचार किया गया है। इस अध्ययन द्वारा लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि इन रचनाओं में प्रादेशिक संस्कृति का मनोरम्य - प्रतिबिम्ब भी परिलक्षित होता है। प्रस्तुत अध्ययन लेखक का मूलत: निजी प्रयास है। युगीन परिवेश के अध्ययन के अनुशीलन में सम्बन्धित ग्रन्थों की इसमें सहायता ली गयी है परन्तु लेखक ने उनके आधार पर अपने निजी निष्कर्ष भी प्रस्तुत किये हैं।

अष्टम् अध्याय प्रस्तुत प्रबन्ध की उपलब्धियों से सम्बंधित है। हिन्दी एवं गुजराती के भ्रमरगीत काव्य के अवलोकन के पश्चात् निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भ्रमरगीतों में मधुकर का प्रवेश सर्वत्र नहीं मिलता है। एक ही कथावस्तु को विविधरूपों में चित्रित ~~विभूषित~~ करते भ्रमरगीत काव्य में बाह्य दृष्टि से भले ही असमानता के दर्शन होते हों किन्तु अंतरंग में सूक्ष्म, दृष्टि के साथ प्रवेश करने पर ज्ञात होता है कि उनमें मूल साम्य है। ~~विभिन्न मौलिक उन्मेषों के दर्शन होते हैं~~। भ्रमरगीत सम्बन्धी अधिकांश रचनाओं में संवादात्मकता के समुचित प्रयोग के कारण नाट्यात्मकता का अच्छा निर्वाह मिलता है। सजीव संवादों के कारण श्रीकृष्ण, कुब्जा, उद्धव, नन्द, यशोदा, राधा और गोपियों के पात्र पाठक की आंखों के सामने सजीव रूप में उपस्थित होते हैं। अधिकांश कवियों ने प्रेम-लक्षणा भक्ति का प्रबल समर्थन करने के उद्देश्य से भ्रमरगीत काव्य का प्रणयन किया जो ऐसा प्रतीत होता है। कतिपय कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने परमतत्व श्रीकृष्ण के गुणानुकीर्तन हेतु भी लेखनी का स्पर्श किया है ऐसे कवि कलात्मकता के प्रति विशेष सजग न हों यह स्वाभाविक है। अधिकांश काव्य पद-शैली में लिखे गये हैं। काव्य का विषय ही भावना प्रधान है अत: अधिकांश भ्रमरगीत काव्यों में गीति काव्य के प्राय: सभी गुणों के दर्शन होते हैं। ज्ञान के खण्डन और प्रेम-भक्ति के मण्डन के प्रयास में भ्रमरगीत के कवियों ने प्रेम के रहस्य को गाने का सम्यक् प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत प्रबंध के प्रणयन में लेखक को विभिन्न विद्वानों का सहयोग एवं परामर्श प्राप्त हुआ है। इस सम्बन्ध में लेखक सर्वप्रथम महाराजा सयाजीराव विश्व-विद्यालय के भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष स्वर्गीय डा० विपिन बिहारी जी त्रिवेदी

का श्रद्धापूर्वक स्मरण करता है जिन्होंने लेखक को शोध के लिए प्रस्तुत विषय प्रदान करने की महती कृपा की थी। लेखक गुजराती साहित्य में कृष्ण-भक्ति धारा के महान् विद्वान श्रद्धेय श्री के.का. शास्त्री जी के प्रति अपना आभार प्रकट करता है जिन्होंने लेखक को गुजराती भ्रमरगीत सम्बन्धी सुझाव देकर उपकृत किया है। इस सम्बन्ध में लेखक महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के गुजराती के भूतपूर्व प्राध्यापक स्वर्गीय डा० योगेन्द्र त्रिपाठी जी का अत्यंत कृतज्ञ है जिन्होंने अपने निजी पुस्तकालय से भ्रमरगीत सम्बंधी दुर्लभ हस्तलिखित प्रतियों को देखने तथा उपयोग करने की अनुमति प्रदान करके लेखक को इस दिशा में प्रोत्साहित किया था। मध्यकालीन गुजराती साहित्य के मनीषी विद्वान डा० मंजूलाल मजमूदार का लेखक अत्यंत आभारी है जिन्होंने लेखक को गुजराती भ्रमरगीत काव्य उपलब्ध कराने में सहयोग प्रदान किया है। लेखक प्राच्य विद्या-मन्दिर, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा के निर्देशक डा० भोगीलाल सांडेसरा, के प्रति श्रद्धावनत है जिन्होंने प्राच्य विद्या-मन्दिर में संगृहीत पाण्डुलिपियों को देखने की अनुमति प्रदान की तथा अपने अमूल्य सुझावों द्वारा लेखक का पथ-प्रशस्त किया है। लेखक हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के वर्तमान अध्यक्ष श्रद्धेय डा० मदनगोपाल जी गुप्त के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता है जिन्होंने प्रस्तुत प्रबंध के प्रणयन में न केवल अपने अमूल्य सुझावों द्वारा लेखक का मार्गदर्शन ही किया है वरन् ग्रंथ के अधिकांश अध्यायों को स्वयं देखकर लेखक का उत्साह वर्धन किया है। अन्त में लेखक इस प्रबन्ध के निर्देशक श्रद्धेय डा० दयाशंकर जी शुक्ल के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है जिन्होंने अपने सत्परामर्शों द्वारा आद्यंत लेखक का मार्गदर्शन किया है और प्रस्तुत प्रबन्ध में प्राण-प्रतिष्ठा की है।